ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.1, Jan. – Mar., 2025/14

केदारनाथ सिंह की काव्यभाषा

अनुसुइया मिश्रा एवं अनुराग मिश्रा
https://doi.org/ 10.61410/ had.v20i1.222

भाषा भाव व विचारों के आदान–प्रदान का प्रमुख साधन है। भाषा मानवीय विचारों और भावों को बड़ी ही सरलता व सहजता के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम है। किसी भी काव्य की लोकप्रियता में काव्य–भाषा का महत्चपूर्ण स्थान होता है। काव्य–भाषा जितनी ही सरल व सहज होगी, जनमानस के बीच वह उतनी ही ख्याति प्राप्त कर सकेगी। काव्य–भाषा में कवि जिन शब्दों का प्रयोग करता है वह विशेष अर्थ रखता है। समयानुसार काव्य–भाषा के स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। जब पुरानी भाषा नए भावों के अस्तित्व को पूर्णतया अभिव्यक्त करने में सक्षम प्रतीत नहीं हुई तो समकालीन कवियों ने नयी भाषा का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

केदारनाथ सिंह को भाषा का जादूगर कहा जाता है। वे भाषा के सवाल को एक अहम सवाल मानते हैं उतना ही अहम जितना कि मनुष्य को। वे कहते हैं – ''भाषा का सवाल एक बड़ा सवाल है और यदि मैं कहूँ तो एक कवि के लिए वह जीवन–मरण का सवाल है। मैं भाषा को लोगों की जबान पर से लाने की कोशिश करता हूँ और साथ यह भी कोशिश करता हूँ कि हिन्दी का जो अपना खास मिजाज है, उससे छेड़छाड़ न की जाए। एक चीज की ओर मेरा ध्यान बराबर रहा है कि शब्दों को उनकी जड़ों से ही लाया जाए। जड़ों से मेरा मतलब जीवन के उन स्रोतों से है, जहाँ से शब्द नया अर्थ ग्रहण करते हैं। यहाँ यह कहना जरूरी समझता हूँ कि मेरे निकट शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि वे अपने पूरे विन्यास में रच–खपकर ही अर्थवान होते हैं। समकालीन हिन्दी कविता की भाषा में जो कई बार एक अनुवादपन की गन्ध आती है, मैं उसे अस्वास्थ्यकर मानता हूँ। यह देखकर मुझे अच्छा लगता है कि नए उभरते हुए और खासतौर से ऐसे रचनाकार जो हिन्दी के अलग–अलग क्षेत्रों से सामने आ रहे हैं, उनमें भाषा के इस खतरे के प्रति एक चुपचाप सजगता और सक्रियता दिखलाई पड़ती है।''[1]

केदार जी की कविताओं को पढ़ते समय पाठक की संवेदना सीधे कविता से जुड़ जाती है। उनमें वह अपनी ही भावानुभूति का अनुभव करता है और यही कविता की सफल सम्प्रेषणीयता मानी जाती है। कवि के काव्य में यह विशेषता उसके भाषिक कौशल के कारण दृष्टिगत होती है। वे कहते हैं – भाषा की पटरी के बिना कविता की रेलगाड़ी दौड़ ही नहीं सकती।

केदार जी की आरम्भ की कविताओं में लोक रंग की छटा के दर्शन होते हैं–

''एक दिया वहाँ
जहाँ अभी–अभी
नए चावल का गन्ध भरा पानी फैला है
एक दिया उस घर में
जहाँ नई फसलों की गन्ध छटपटाती है
एक दिया उस जंगले पर –
जिससे दूर नदी की नावें अक्सर दिख जाती हैं।''[2]

उनकी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग बखूबी देखने को मिलता है –

- **शोधार्थी –का0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या**
- **आचार्य – हिन्दी विभाग, का0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या**

''क्या लिखा है उस सुनहले पत्र में –
जो तुम्हारी ग्रीवा बंधा है !
पर रुको तो,
भूलता हूँ मैं कि मैंने कब, कहाँ, किस सिन्धु तट पर
तुम्हें छोड़ा था
कब दिये थे पंख ये तुमको ?''[3]

यूँ तो उनकी कविताओं के शब्द साधारण से प्रतीत होते हैं परन्तु उसके आशय अत्यन्त गहरे। उनकी काव्य–भाषा अज्ञेय की काव्य–भाषा से प्रभावित है। 'नए वर्ष के प्रति' कविता का एक उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है –

''अनछुए तट
याकि रास्तों के नए भटकाव
धूप गन्धी पंख चिड़ियों के
कि टूटे आंधियों के पाँव !
लाओगे ! क्या लाओगे !''[4]

कवि की भाषा में नई संवेदना व नई चमक दिखाई देती है। उनकी भाषा केवल अर्थ को व्यक्त नहीं करती अपितु वस्तु और स्थिति को भी प्रकट करती है। वे भाषा को नई गत्यात्मकता प्रदान करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि गत्यात्मकता परिवर्तन की साक्षी है–

''मेरे हाथ आज भी कुछ छूने–छूने को व्यग्र हैं
मेरे पाँव आज भी
कहीं जाने–जाने को बेचैन
हालाँकि सच कहूँ तो पचास बरस हुए
मैं आज भी पृथ्वी पर
चलना सीख रहा हूँ।''5

केदार जी एक सजग कवि होने के कारण भाषा के प्रति सदैव सचेत रहते हैं। भाषा शुरू से ही उनके लिए एक खास समस्या रही है। वे कहते हैं – ''सामाजिक विकास के साथ–साथ हमने भाषा का जो ढर्रा विकसित कर लिया है,

उसकी इस कठोर, सफलताकामी और अर्थकामी संसार में अलग–अलग व्यक्ति के नितान्त अपने जीवन को समझने और समझाने की शक्ति क्षीण होती गई है। 'जिल्दाना कहाँ है' – इसी चिन्ता के वशीभूत लिखी गई अत्यन्त ही सशक्त कविता है जिसमें कवि को सपने में जिल्दाना नामक एक अनजान जगह दिखलाई पड़ती है। उसमें उसे पत्थर के बाजे पर समुद्री धुन बजाता एक परेशान कवि दिखाई देता है। वे लिखते हैं –

''मुझे मिलना ही होगा
उस दढ़ियल कवि से
जानना ही होगा उसकी भाषा का दुख
उसकी लय के झटके
उसकी चुप्पी की चीर–फाड़।''[6]

कवि को भोजपुरी से अत्यधिक लगाव था, जिसके कारण उनकी कविताओं में भोजपुरी शब्दों की भरमार है। इन शब्दों से काव्य में गीतात्मकता व कोमलता का भाव उत्पन्न होता है साथ ही देशज संवेदना की झलक भी दृष्टिगोचर होती है –

''छोटे से आँगन में
माँ ने लगाए हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार।''[7]

बाद के संग्रहों में धीरे–धीरे कवि की भाषा में कोमलता के स्थान पर कठोरता एवं परुषता की झलक दिखाई देने लगी। इसका कारण यथार्थता को प्रस्तुत करना था। 'रोटी' कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है –

''वह आगे बढ़ रही है
धीरे–धीरे
झपट्टा मारने को तैयार
वह आगे बढ़ रही है
उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद
और विचारों तक''।[8]

केदार जी भाषा की **विश्वसनीयता** एवं **सम्प्रेषणीयता** को विशेष महत्व देते हैं। नई कविता के जन्म के साथ भावों के सम्प्रेषण की समस्या सामने आई। वे कहते हैं –''कई बार हम अपनी सारी भाषा की अर्जित क्षमता के बावजूद पाते हैं कि जो सबसे महत्वपूर्ण बात हमें कहनी थी, वही नहीं कह पाए। भाषा सम्बन्धी प्रयोग, संप्रेषण की प्रक्रिया का बड़ा ही जटिल स्वरूप है, यह कई बार परेशान करता है आदमी को, और मेरा ख्याल है कि यह आधुनिक मनुष्य को ज्यादा ही परेशान करता है।''[9]

कवि की कविताओं में चुप्पियाँ बहुत कुछ कहती हैं। ''वे जानते हैं कि लोग कई बार चुप हो जाते है जिन्हें भाषा आती है और वे चुप्पी की तह में जाना चाहते हैं –

वे क्यों चुप–चुप हैं जिनको आती है भाषा
वह क्या है जो दिखता है धुआँ–धुआँ सा।[10]

'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' काव्य–संग्रह में संगृहीत 'कुछ टुकड़े' कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है –

''अकेली चुप्पी
भयानक चीज है
जैसे हवा में गैंडे का
अकेला सींग
पर यदि दो लोग चुप हों
पास–पास बैठे हुए
तो उतनी देर
भाषा के गर्भ में
चुपचाप बनती रहती है
एक और भाषा''[11]

कवि की भाषा में दुरूहता व रूखेपन के लिए कोई स्थान नहीं है। भाषा में आकर्षण है जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। ''केदार जी की काव्य भाषा उदय प्रकाश की कहानियों की भाषा की भाँति एक अजीब सम्मोहन में बांध लेती है। भाषा में प्रश्नानुकूलता तथा कथन–भंगिमा केदारनाथ सिंह की निजी और अनूठी विशेषता कही जा सकती है। भाषा का यह विलक्षण प्रयोग चमत्कार नहीं अपितु संश्लिष्ट शब्द–चित्र और भाव–लोक का निर्माण करता है। कविता प्रश्न प्रतिप्रश्न

करती हुई कौतूहल और जिज्ञासा के एक ऐसे परिदृश्य का निर्माण करती है जो पाठक की अनुभूति–जगत से सीधे जुड़ जाता है।''[12]

'अकाल में सारस' काव्य–संग्रह में काव्य–भाषा अत्यन्त संवेदनशील एवं सक्रिय दिखाई पड़ती है। इस संग्रह की पहली कविता 'मातृभाषा' है। इस कविता के माध्यम से कवि की न केवल मातृभाषा के प्रति आस्था का भाव दिखाई देता है बल्कि इस संवेदन–शून्य होते संसार में रागात्मक ऊष्मा के संचार की भावना भी दिखाई देती है। कवि अरुण कमल 'अकाल में सारस' की काव्य–भाषा के विषय में कहते हैं – ''केदारनाथ सिंह ने भाषा के अनेक स्तरों को पकड़ा है, शब्दों के अनेकानेक चेहरों और रंगों को पहचाना है और अन्त में जब कवि को पाँच–छह सुन्दर शब्द घेर लेते हैं तो रक्षा के लिए आता है खून से लथपथ एक मामूली शब्द ('ठंड से नहीं मरते शब्द')। यह शब्द नयी, भिन्न प्रकार की जीवन–स्थिति का प्रतिनिधि है। नयी जीवन–स्थितियाँ नयी भाषा भी साथ लाती हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि केदार जी का यह संग्रह उन्हीं के पिछले संग्रहों के मुकाबले ज्यादा साफ और सरल है – यह अलग बात है कि सरल रेखा जैसी कोई चीज नहीं होती।''[13]

केदार जी का कहना है कि सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अपनी–अपनी भाषाएँ होती हैं और सभी उन्हीं के अनुसार अपनी बात कहते हैं बस उन्हें सुनना आना चाहिए –

''और पत्थर के भी होंठ होते हैं
बालू के भी
राख के भी
पृथ्वी तो यहाँ से वहाँ तक
होंठ ही होंठ है।''[14]

केदार जी इस बात पर सदैव विचार करते हैं कि जिन बातों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से न हो सके, उसके लिए क्या किया जाना चाहिए। वे ऐसी वर्णमाला की रचना करना चाहते हैं जिनसे उन भावों की अभिव्यक्ति हो सके। साथ ही वह यह भी जानना चाहते है कि वर्णमाला के अक्षरों की रचना किसने की होगी–

''किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर
ये काले–काले अक्षर
भूरे–भूरे अक्षर
किसने बनाये
खड़िया ने
चिड़िया के पंख ने
दीमकों ने
ब्लैक बोर्ड ने
किसने
आखिर किसने बनाये
वर्णमाला के अक्षर।''[15]

काव्यभाषा के मुद्दे पर केदारनाथ सिंह खास तौर पर चौकन्ने हैं और हो भी क्यों नहीं जब कि भाषा को लेकर उनका रुख एकदम स्पष्ट हो। बकौल कवि, ''भाषा के सूत्र पकड़ने के लिए शब्द महत्वपूर्ण हो उठते हैं। कविता शब्दबद्ध है, शब्द से पहले कविता नहीं है और शब्द में जो उतरकर आता है वह जरूरी नहीं कि हमारे मनोवेग का हिस्सा हो। भाषा केवल माध्यम नहीं है और सजावट की वस्तु तो बिल्कुल नहीं, इसलिए पूरी प्रक्रिया में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा बाहर यानी समाज की ओर से आती है, जिसे हम अपने साँचे में ढालने की कोशिश करते हैं। जब भाषा

आती है तो बहुत कुछ लेकर आती है और जो चीज लेकर आती है, उसका उस समुदाय से गहरा रिश्ता होता है जिसके द्वारा वह ली जाती है – आखिर भाषा स्मृतियों का पुंज है और विलक्षण यह है कि स्मृतियाँ पुरानी से पुरानी और एकदम ताजा भाषा में घुली–मिली होती है, इसलिए मुझे लगता है कि किसी रचना की प्रक्रिया की पड़ताल वस्तुतः वह जिस तरह से भाषा में ढली है, उसकी पड़ताल है।''[16]

संदर्भ – सूची

1. केदारनाथ सिंह, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ 166
2. केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ–50–51
3. केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ–39
4. केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ–64
5. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, पृष्ठ–64
6. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, पृष्ठ–115
7. केदारनाथ सिंह, अभी बिल्कुल अभी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ–26
8. केदारनाथ सिंह, जमीन पक रही है, प्रकाशन संस्थान पृष्ठ–24 – 25
9. केदारनाथ सिंह, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ–61
10. केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो, पृष्ठ–37
11. केदारनाथ सिंह, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, राजकमल प्रकाशन पृ0–98
12. अनिल त्रिपाठी, मिट्टी की रोशनी शिल्पायन दिल्ली 110032 पृष्ठ–173
13. उत्तर केदार, पृष्ठ–213
14. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन पृष्ठ–24–25
15. केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन पृष्ठ–12
16. केदारनाथ सिंह, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ–68